दयाल सिंह

बनाम

राजस्थान राज्य

13 अप्रैल, 2004

[एन. संतोश हेगड़े और बी. पी. सिंह, न्यायाधिपतिगण]

खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम, 1954 - धाराये 7 और 16 - खाद्य मिलावट रोकथाम नियम, 1955 (1988 में संशोधित) - परिशिष्ट 'बी' - वस्तु सं.25.01 - चीनी मिष्ठान्न- खनिज तेल की उपस्थिति नियमो के तहत मिलावट के बराबर है - अभियुक्त की दुकान से बरामद मिष्ठान्न में खनिज तेल पाया गया - दोषसिद्धि - नियमों में संशोधन करके 0.20 प्रतिशत तक खनिज तेल की उपस्थिति की अनुमति दी गई - अभियुक्त संशोधित मानक के आधार पर बरी होने की मांग कर रहा है - अभिनिर्धारित : आरोपित बरी होने का हकदार नहीं है क्योंकि संशोधन खनिज तेल की उपस्थिति को पूरी छूट नहीं देता है - यह केवल 0.20 प्रतिशत तक की अनुमति देता है - सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट खनिज तेल का प्रतिशत नहीं बताया गया है क्योंकि संबंधित समय के दौरान ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी - उपभोक्ताओ के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये सख्त कानून बनाये गये है, इसलिये अदालत नरम दृष्टिकोण नहीं अपना सकती।

अपीलार्थी की दुकान से बरामद कठोर उबला हुआ चीनी मिष्ठान्न का नमूना खनिज तेल की उपस्थिति और अप्रिय गंध और स्वाद के कारण मिलावटी पाया गया। अपीलार्थी को खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम के तहत दोषी पाया गया और 2

साल कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। उसने सत्र न्यायाधीश से अपील की। अपील के लंबित रहने के दौरान, नियमों में संशोधन किया गया था, जिसके आधार पर खनिज तेल की उपस्थिति की अनुमति शर्तों के अधीन थी, कि खनिज तेल खाद्य श्रेणी का था और स्नेहक के रूप में उपयोग किया जाता था, और वजन के हिसाब से 0.20 प्रतिशत से अधिक नहीं था। सत्र न्यायाधीश ने दोषसिद्धि को बरकरार रखा लेकिन सजा को घटाकर 6 महीने कर दिया। अपीलार्थी ने असफल रूप से उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण को प्रस्तुत किया। इसलिए याचिका दायर की गई है।

अपीलार्थी ने तर्क दिया कि चूंकि संशोधित नियम लागू होने पर अपील लंबित थी, इसलिए न्यायालय इसका संज्ञान लेने के लिए बाध्य था और यह अभिनिर्धारित करने के लिए बाध्य था कि नमूना मिलावटी नहीं था; कि सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट दोषपूर्ण थी क्योंकि इसमें नमूने में पाए गए खनिज तेल के प्रतिशत का उल्लेख नहीं था और आपराधिक कानून की कठोरता को कम करने वाले किसी भी कानून को इस अर्थ में पूर्वव्यापी माना जाना चाहिये कि यह अपील सहित, लंबित कार्यवाही में लागू होना चाहिये,

अपील खारिज करते हुए कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया :

1.1 . यह सर्वसम्मत है कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी अपराध के लिये दोषी नहीं ठहराया जाएगा, सिवाय उस कार्य के किये जाने के समय लागू कानून के उल्लंघन के अलावा, न ही उस पर उससे अधिक जुर्माना लगाया जायेगा जितना अपराध के घटित होने के समय लागू कानून के तहत उसे दिया जा सकता था। नया अपराध बनाने वाला दंड विधान हमेशा संभावित होता है और किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किये गये अपराध के लिये कानून के अनुसार दंडित किया जा सकता है क्योंकि यह उस तारीख को मौजूद था जिस दिन अपराध किया गया था। [110 - ई, जी.)

रतन लाल बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1965) एस. सी. 444, पर भरोसा व्यक्त किया।

2. प्रासंगिक समय में, खनिज तेल की मात्र उपस्थिति, एक अस्वास्थ्यकर घटक होने के कारण, मिलावट की श्रेणी में आती थी और इसलिये, सार्वजनिक विश्लेषक के लिए नमूने में पाए गए खनिज तेल के प्रतिशत का उल्लेख करना आवश्यक नहीं था। इसके अलावा संशोधित मानक के तहत नमूने में पाया जाने वाला खनिज तेल खाद्य श्रेणी का होना चाहिए, यदि स्नेहक के रूप में उपयोग किया जाता है। सार्वजनिक विश्लेषक द्वारा मामले के इस पहलू पर कोई रिपोर्ट नहीं है, क्योंकि उन्हें तब निर्धारित मानक को ध्यान में रखते हुए ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा नहीं है कि संशोधित नियम कठोर उबला हुआ चीनी मिष्ठान में किसी भी मात्रा में और किसी भी गुणवत्ता के खनिज तेल की उपस्थिति की अनुमति देते हैं। संशोधन के बाद भी खनिज तेल की उपस्थिति मिलावट के बराबर होगी यदि यह खाद्य श्रेणी का नहीं है, और स्नेहक के रूप में उपयोग नहीं किया जाता है, और यह वजन के हिसाब से 0.20% से अधिक है। वर्तमान मामले में यह विवादित नहीं था कि आरोपित अपराध के लिए कानून द्वारा न्यूनतम 6 महीने के कठोर कारावास की सजा निर्धारित है। अपीलकर्ता को 6 महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। खाद्य पदार्थों के उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिये खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम और उसके तहत बनाये गये नियमो का कडाई से पालन आवश्यक है। यदि अपराधी केवल जुर्माना लेकर छूट जायेंगे तो कडे कनूनो का कोई मतलब नहीं रह जायेगा। [111 - डी-एफ; 112-ए-सी]

दिल्ली नगर निगम बनाम माई राम उर्फ भय राम, (1974) खाद्य अपमिश्रण मामलों की रोकथाम; श्याम लाल बनाम राज्य, एआईआर (1968) ऑल 392 ; कृष्ण गोपाल शर्मा और अन्य बनाम दिल्ली सरकार एन. सी. टी., [1996] 4 एस. सी. सी.

513; उड़ीसा राज्य बनाम के. राजेश्वर राव, [1992] 1 एस. सी. सी. 365 और एन. सुकुमारन नायर बनाम खाद्य निरीक्षक, मावेलिकारा, (1995) सीआरएल, एल. जे. 3651 - संदर्भित किये गये।

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या 1042/1997

एस.बी. क्रिमिनल आर.पी. नंबर 200/1988 में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश दिनांक 1.8.97 से।

एम. एन. कृष्णनमणि, एस. पी. जुनेजा, सौम्यजीत पानी और बैजयंता बरुआ; अपीलार्थी के लिये।

अरूणेश्वर गुप्ता, अतिरिक्त महाधिवक्ता, राजस्थान के लिये और प्रतिवादी के लिए अमरजीत सिंह बेदी।

न्यायालय का निर्णय बी. पी. सिंह के द्वारा द्वारा दिया गया था। अपीलार्थी पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जोधपुर, राजस्थान द्वारा मुकदमा चलाया गया था जिस पर खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था चूंकि अपीलार्थी से ली गई सख्त उबली हुई चीनी के मिष्ठान्न के नमूने में खनिज तेल की उपस्थिति के साथ-साथ इसकी बहुत अप्रिय गंध और स्वाद होने के कारण भी मिलावट पाई गई थी। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा 25 अप्रैल, 1986 के निर्णय और आदेश में अपीलार्थी को आरोपित अपराध का दोषी पाया गया और उसे 2 साल के कठोर कारावास और 2 हजार रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई। जुर्माने का भुगतान न करने पर 6 महीने के लिए कठोर कारावास से गुजरना होगा। अपीलार्थी द्वारा दायर अपील को जिला और सत्र न्यायाधीश, जोधपुर द्वारा 4 अगस्त, 1988 के उनके आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिन्होंने दोषसिद्धि को बरकरार रखा लेकिन सजा को संशोधित किया और इसे घटाकर 6 महीने के कठोर

कारावास और 1 हजार रुपये के जुर्माने में बदल दिया। जुर्माने का भुगतान न करने पर 1 महीने के लिए कठोर कारावास से गुजरना होगा। यह न्यूनतम सजा थी जो अपीलार्थी के खिलाफ साबित आरोप के लिए अधिनियम के तहत दी जा सकती थी। इसके बाद अपीलार्थी ने जोधपुर में राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष एकल पीठ आपराधिक पुनरीक्षण नंबर 200/1988 को प्रस्तुत किया, लेकिन इसे उच्च न्यायालय द्वारा अपने दिनांक 1 अगस्त, 1997 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। अपीलार्थी विशेष अवकाश द्वारा हमारे सामने है।

मामले के तथ्य विवादित नहीं हैं। 25 अक्टूबर, 1979 को खाद्य निरीक्षक ने अपीलार्थी की दुकान से सख्त उबली हुई चीनी मिठाई का नमूना लिया। अधिनियम और नियमों की आवश्यकताओं का पालन करने के बाद नमूना सार्वजनिक विश्लेषक के पास भेजा गया और 16 नवंबर, 1999 की सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट से पता चला कि नमूना निर्धारित मानक के अनुसार नहीं था क्योंकि खनिज तेल मौजूद पाया गया जो कि अस्वास्थ्यकर घटक था, और यह भी कि नमूने में बहुत अप्रिय गंध और स्वाद था। खाद्य निरीक्षक ने 29 जनवरी, 1980 को शिकायत दर्ज कराई। विचारण के बाद विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अपने निर्णय और आदेश दिनांक 25/4/1986 द्वारा को अपीलार्थी को दोषी पाया और उसे सजा सुनाई जैसा कि पहले देखा गया था।

अपीलार्थी ने जिला एवं सत्र न्यायाधीश, जोधपुर की अदालत के समक्ष अपील प्रस्तुत की। अपील के लंबित रहने के दौरान 8 अप्रैल, 1988 को एक अधिसूचना जारी की गई थी, जिसके तहत केंद्र सरकार ने रोकथाम और खाद्य अपमिश्रण अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए खाद्य अपमिश्रण रोकथाम नियम, 1955 में संशोधन किया था। परिशिष्ट 'बी' मद सं. 25.01 में संशोधन किया गया था और संशोधित नियमों के तहत, खनिज तेल की उपस्थिति

की अनुमति दो शर्तों के अधीन थी, अर्थात् खनिज तेल खाद्य श्रेणी का था यदि स्नेहक के रूप में उपयोग किया जाता है, और वजन के हिसाब से 0.20% से अधिक नहीं था। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि वर्ष 1988 में लाए गए संशोधन में कठोर उबली हुई चीनी की मिठाई में खनिज तेल की उपस्थिति की बिना शर्त अनुमति नहीं दी गई थी, बल्कि वजन के हिसाब से केवल 0.20 प्रतिशत की अनुमति दी गई थी बशर्ते कि यह खाद्य श्रेणी का था और स्नेहक के रूप में उपयोग किया जाता था।

अपीलार्थी द्वारा दायर अपील को जिला और सत्र न्यायाधीश, जोधपुर ने अपने फैसले और आदेश दिनांक 4/8/1988 द्वारा खाजिर कर दिया था और जैसा कि पहले कहा गया था, कि दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए अपीलीय अदालत ने उनकी सजा को घटाकर 6 महीने के कठोर कारावास की न्यूनतम निर्धारित सजा कर दिया। उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई थी।

अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कृष्णमणि, ने हमारे समक्ष बहुत दृढता से तर्क दिया कि अधीनस्थ अदालतों ने नियमों के संशोधित प्रावधानों पर ध्यान नहीं देने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की है। चूंकि संशोधित नियम लागू होने पर अपील लंबित थी, इसलिए न्यायालय इसका संज्ञान लेने और यह अभिनिर्धारित करने के लिए बाध्य था कि नमूना मिलावटी नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट दोषपूर्ण थी क्योंकि इसमें नमूने में पाए गए खनिज तेल के प्रतिशत का उल्लेख नहीं था। उन्होंने अपनी इस दलील का समर्थन करने के लिए कई फैसलों पर भरोसा किया कि आपराधिक कानून की कठोरता को कम करने वाले किसी भी कानून को इस अर्थ में पूर्वव्यापी माना जाना चाहिए इस अर्थ में कि इसे अपील सहित लंबित कार्यवाही पर लागू माना जाना चाहिए। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अधीनस्थ

अदालतों ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की थी कि संशोधन केवल भविष्यलक्षी रूप से संभावित था और अपीलार्थी को उस तारीख से लाभ नहीं हुआ जिस दिन अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया था, नमूना निर्धारित मानको के अनुसार अपमिश्रित था।

अपीलार्थी के विद्वान वकील ने दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड पीठ के एक फैसले का विचार योग्य निर्णय 1974 खाद्य अपमिश्रण निवारण मामले के पृष्ठ संख्या 21 सुंदर लाल बनाम दिल्ली नगर निगम में प्रकाशित को प्रस्तुत किया। उस मामले में उच्च न्यायालय के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान चक्रवृद्धि हींग के मानक को 9 मार्च, 1966 की अधिसूचना द्वारा बदल दिया गया था और कि नमूना नए मानक के अनुरूप है। नतीजतन, यह तर्क दिया गया कि अपीलार्थी बरी होने का हकदार था। प्रस्तुतिकरण पर विचार करते हुए, विद्वान न्यायाधीशों ने कहा कि नए मानक ने कानून की कठोरता को दूर कर दिया है और अभियुक्त के पक्ष में होने के कारण, इसे एक पूर्वव्यापी प्रभाव दिया जाना चाहिये। इस प्रस्ताव के लिए ए. आई. आर. 1968 ऑल 392 : श्याम लाल बनाम राज्य में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंड पीठ के एक निर्णय पर निर्भरता रखी गई थी जिसमें क्रॉफर्ड के कंस्ट्रक्शन ऑफ स्टैच्यू (1940 संस्करण) बता दें कि पृष्ठ 599 पर क्रॉफर्ड के कंस्ट्रक्शन ऑफ स्टैच्यूट (1940 संस्करण) पेज नंबर 599 से उद्धृत करने के बाद, न्यायालय ने कहाः

> "निर्माण का उपरोक्त नियम इस सिद्धांत पर आधारित है कि जब तक कायर्वाही अंतिम उपाय के न्यायालय में अंतिम निर्णय तक नहीं पहुंच जाती, तब तक उस न्यायालय को, जब अपना निर्णय घोषित

करने की बात आती है, तो उसे उस समय मौजूद कानून के अनुरूप होना चाहिये।"

इसमें आगे अनुमोदन के साथ इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले से निम्नलिखित अंश को उद्धृत किया गया :-

"यह हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि दंडात्मक कानून के निर्माण का सच्चा नियम वह है जहां विधायिका अभियुक्त के पक्ष में कानून को संशोधित करने का अपना इरादा दिखाती है,, ताकि पिछले अनुभव और बदली हुई सामाजिक स्थितियों के आलोक में कानून की कठोरता को कम किया जा सके और जब तक अभियुक्त के खिलाफ अभियोजन दोषसिद्वि के फैसले के साथ समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसके खिलाफ कार्यवाही को अनुचित माना जाता है और उस पर लागू होने वाला कानून विधायिका द्वारा संशोधित कानून होगा। व्यक्ति को फैसले की तारीख पर मौजूद कानून को ध्यान में रखना होगा। यह उचित प्रतीत होता है कि एक अभियुक्त व्यक्ति खुद को एक ऐसे कानून के तहत उच्च सजा के लिये उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है, जिसका अस्तित्व समाप्त हो गया है और जिसे एक नए कानून के रूप में प्रतिस्थापित किया गया है जो उसके पक्ष में है। जहां दंडात्मक कानून की व्याख्या के बारे में प्रश्न है, न्यायालय को इसके प्रावधानो को अभियुक्तो पर लागू होने के सबंध में लाभकारी रूप से समझना चाहिये। यह कानून की भावना और विधानमंडल की इच्छा का उल्लंघन होगा जैसा कि मूल अधिनियम के आधार पर किसी आरोपी व्यक्ति को सजा देने के लिये संशोधित कानून में

व्यक्त किया गया है, जिसे विधायिका ने सार्वजनिक हित के विरूद्व हानिकारण और कठोर माना है।"

उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा एआईआर (1965) एस. सी. 444: रतन लाल बनाम पंजाब राज्य में निर्धारित सिद्धांत पर भरोसा किया।

हमारे विचार में रतन लाल (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के फैसले पर निर्भरता स्पष्ट रूप से गलत थी। दरअसल उस फैसले में दिये गये सिद्वांत अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते है। रतन लाल (उपरोक्त) में यह न्यायालय दंडात्मक कानून के पूर्वव्यापी संचालन से संबंधित नहीं था। इस न्यायालय द्वारा विचार के लिए जो प्रश्न उठाया गया था, वह अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 6 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए एक अपीलीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रश्न था। उस मामले में उच्च न्यायालय ने अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 11 के तहत कार्रवाई नहीं की और उसकी अंतर्गत धारा 3,4 और 6 के तहत अभियुक्त को परिवीक्षा का लाभ प्रदान करते हुए आदेश पारित करने में विफल रहा। उस संदर्भ में एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या अधिनियम की धारा 11 के तहत शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा उसके समक्ष लंबित अपील में किया जा सकता है, भले ही ऐसी शक्ति का प्रयोग विचारण अदालत द्वारा नहीं किया जा सकता था, क्योंकि अपराध एक समय पर किया गया था जब अपराधी परिवीक्षा अधिनियम लागू नहीं किया गया था। इस न्यायालय ने टिप्पणी कीः

"पहला सवाल यह है कि क्या उच्च न्यायालय, अधिनियम की धारा 11 के तहत कार्य करते हुए, अधिनियम की धारा 6 के तहत अदालत को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर सकता है। यह कहा जाता है कि अधिनियम की धारा 11 (3) के तहत उच्च न्यायालय का

क्षेत्राधिकार केवल उस मामले तक सीमित है जिसे अपील या पुनरीक्षण द्वारा इसकी फाइल में लाया गया है और इसलिए, यह केवल ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोगकर सकता है जैसा कि विचारण न्यायालय के पास था, और वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय अधिनियम की धारा 6 के तहत कोई आदेश नहीं दे सकता था, जैसा कि जब उसने आदेश दिया था उस समय अधिनियम को गुड़गांव जिले तक नहीं बढ़ाया गया था। इस धारणा पर, तर्क आगे बढ़ता है, अधिनियम को पूर्वव्यापी संचालन नहीं दिया जाना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा दिया जाता है, तो यह अधिनियम के लागू होने से पहले किसी व्यक्ति द्वारा किये गये कार्य के लिये उसके आपराधिक दायित्व को प्रभावित करेगा। इस तर्क के समर्थन में निहित अधिकारों के संदर्भ में किसी क़ानून की पूर्व सक्रियता के सवाल से संबंधित निर्णयों का उल्लेख किया गया है। हर कानून जो निहित अधिकार को छीनता है या खराब करता है, वह पूर्वव्यापी है। प्रत्येक भूतलक्षी कानून आवश्यक रूप से पूर्वव्यापी है। संविधान के अनुच्छेद 20 के तहत, किसी भी व्यक्ति को किसी कानून के उल्लंघन के अलावा किसी भी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा सिवाय उस कार्य के कियेजाने के समय लागू कानून के उल्लंघन के अलावा, जिस पर अपराध के रूप में आरोप लगाया गया है और न ही उससे अधिक दंड के अधीन किया जाएगा जो हो अपराध किये जाने के समय लागू कानून के तहत लगाया जा सकता था।

लेकिन एक भूतलक्षी कानून जो केवल एक आपराधिक कानून की कठोरता को कम करता है, उक्त निषेध के अंतर्गत नहीं आता है।

यदि कोई विशेष कानून उस प्रभाव के लिए प्रावधान करता है, भले ही, वह पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू, तो वह वैध होगा सवाल यह है कि क्या ऐसा कानून पूर्वव्यापी है और, यदि ऐसा है, तो किस हद तक निर्माण के सुस्थापित नियमो को ध्यान मे रखते हुये किसी विशेष कानून की व्याख्या पर निर्भर करता है।"

प्रतिपादित सिद्धांत के आलोक में, यह न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करने के लिए आगे बढ़ा कि क्या अपीलीय अदालत के रूप में उच्च न्यायालय के पास धारा 11 के तहत अभियुक्त को अधिनियम के तहत लाभ देने की शक्ति थी। ऐसा करते हुये इस न्यायालय ने देखा कि वह ऐसे मामले से नहीं निपट रहा था जहां कोई कार्य जो अपराध नहीं था, उसे अधिनियम के तहत अपराध बना दिया जाता है; न ही यह ऐसा मामला था जहां अधिनियम के तहत अधिनियम लागू होने से पहले किसी अपराध के लिए मिलने वाली सजा से अधिक सजा दी गई हो। इस न्यायालय ने आगे कहाः

"यह एक ऐसा उदाहरण है जहाँ न तो अपराध की सामग्री और न ही सजा की सीमा का उल्लंघन किया जाता है, बल्कि अदालत की एजेंसह के माध्यम से एक अारोपी के सुधार में मदद करने का प्रावधान किया गया है। फिर भी यह कानून प्रश्नगत क्षेत्र में लागू होने से पहले किये गये अपराध को प्रभावित करता है। यह, इसलिए, यह एक भविष्यलक्षी कानून है और इसका पूर्वव्यापी संचालन होता है। इस तरह के प्रावधान के दायरे पर विचार करते समय हमे संबंधित धारा के प्रावधानो की हिंसा किये बिना न्यायिक राय की आधुनिक प्रवृति द्वारा प्रतिपादित लाभकारी निर्माण के नियम को अपनाना चाहिए। अधिनियम की धारा 11 (3), जिसके आधार पर राज्य के लिए

विद्वान वकील अपने अधिकांश तर्कों को आगे बढ़ाते हैं, वर्तमान अपील के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है, उक्त उप-धारा केवल उस मामले में लागू होती है जहां अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत किसी आरोपी से निपटनेसे इंकार करने वाले न्यायालय के आदेश के खिलाफ किसी अपील का प्रावधान नहीं है या प्रस्तुत नही की जाती है और वर्तमानमामले में अपीलसत्र न्यायाधीश के पास होती है और वास्तव में एक अपील मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ की गई थी। प्रावधान जो सीधे वर्तमान मामले पर लागू होते है वह अधिनियम की धारा 11(1) है, जिसके तहत अपराधी पर मुकदमा चलाने और कारावास की सजा देने का अधिकार रखने वाले किसी भी न्यायालय द्वारा और उच्च न्यायालय या किसी अन्य द्वारा भी अधिनियम के तहत आदेश दिया जा सकता है। अदालत जब मामला अपील या पुनरीक्षण पर उसके समक्ष आता है। उप-धारा प्रत्यक्षतः अधिनियम के तहत आदेश देने के लिये अपीलीय अदालत के क्षेत्राधिकार को केवल उस मामले मे सीमित नहीं करती है जहां विचारण न्यायालय वह आदेश दे सकता था। इसमें इस्तेमाल की गई शब्दावली इतनी व्यापक है कि अपीलीय अदालत या उच्च न्यायालय को, जब उसके सामने मामला आता है,ऐसा आदेश देने में सक्षम बनाया जा सके। इसे जानबूझकर व्यापक बनाया गया,क्योंकि यह अधिनियम एक सामाजिक सुधार को लागू करने के लिये बनाया गया था। चूंकि अधिनियम सजा की मात्रा में बदलाव नहीं करता है, बल्कि केवल अपराधी को सुधारने का प्रावधान पेश करता है, ऐसा कोई कारण नहीं है कि विधायिका को ऐसी शक्ति के प्रयोग पर रोक लगानी चाहिये,

भले ही आरोपी के खिलाफ एक स्तर पर या अन्यथा न्यायाधिकरण के पदानुक्रम में मामला लंबित हो।"

निर्णय इस सिद्धांत को मंजूरी देता है कि एक्स पोस्ट फैक्टो कानून जो केवल आपराधिक कानून की कठोरता को कम करता है, हालांकि संचालन में पूर्वव्यापी है, मान्य होगा। इस सिद्धांत को स्पष्ट करने के बाद न्यायालय ने अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 11 की व्याख्या की और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रावधान की सही व्याख्या पर उच्च न्यायालय को अपीलीय स्तर पर शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार क्षेत्र था, और यह शक्ति ऐसे मामले तक सीमित नहीं थी जहां विचारण अदालत यह आदेश दे सकती थी। धारा का वाक्यांश इतना व्यापक था कि जब मामला उसके सामने आया तो अपीलीय न्यायालय या उच्च न्यायालय को ऐसा आदेश देने में सक्षम बनाया। इसलिए, हम यह नहीं पाते हैं कि रतन लाल ने इस सुस्थापित सिद्धांत से विचलन किया है कि किसी भी व्यक्ति को अपराध के रूप में आरोपित कार्य के समय लागू कानूनके उल्लंघन के अलावा किसी भी अपराध के लिये दोषी नहीं ठहराय जायेगा, न ही उसे अपराध के समय लागू कानून के तहत दिये गये दंड से अधिक का दंड दिया जायेगा। "इस न्यायालय ने केवल यह सिद्धांत निर्धारित किया कि एक भूतलक्षी कानून जो केवल एक आपराधिक कानून की कठोरता को कम करता है, उक्त निषेध के अंतर्गत नहीं आता है, और यदि किसी विशेष कानून ने इस आशय का प्रावधान किया है, हालांकि वह पूर्वव्यापी रूप से लागू है, तो यह वैध होगा। इसलिए, रतन लाल को अपराधियो की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 11 की व्याख्या पर निर्णय लिया गया था, जो इस अर्थ में एक दंडात्मक क़ानून नहीं था कि यह एक अपराध नहीं बनाता है और उसके लिए सजा का प्रावधान नहीं करता है। इसलिए, हम यह नहीं पाते हैं कि रतन लाल में निर्धारित सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों से अलग हैं कि एक दंडात्मक क़ानून जो नए अपराध बनाता है, हमेशा भविष्यलक्षी होता है और

एक व्यक्ति को कानून के अनुसार उसके द्वारा किए गए अपराध के लिए दंडित किया जा सकता है जैसा कि उस तारीख को मौजूद था उस दिन कोई अपराध किया गया था।

दिल्ली उच्च न्यायालय के एक अन्य फैसले दिल्ली नगर निगम बनाम माई राम उर्फ भाया राम सुंदर लाल, उसी खंड में प्रकाशित पेज नंबर 19 का अनुसरण किया गया और रतन लाल (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया गया। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने सुंदर लाल बनाम दिल्ली नगर निगम (उपरोक्त) और दिल्ली नगर निगम बनाम माई राम उर्फ भाया राम (उपरोक्त) और इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने श्याम लाल बनाम राज्य (उपरोक्त) ने कानून में यह अभिनिर्धारित करने में गलती की है कि खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम के तहत पुराने के स्थान पर नए मानकों को प्रतिस्थापित करने वाली अधिसूचना, किसी अभियुक्त के अपराध का न्याय करते समय, पूर्वव्यापी संचालन दिया जायेगा। हमारा स्पष्ट रूप से यह विचार है कि इस न्यायालय ने रतन लाल ने ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं रखा था।

हम यह भी पाते हैं कि ऐसे मामलों में नियमो में संशोधन से पहले उत्पन्न हुये मामलो में संशोधित मानको को लागू करना अव्यवहारिक होगा, जैसा कि इस मामले के तथ्यों से पता चलता है। जैसा कि अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील ने बताया, सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट में नमूने मे मौजूद खनिज तेल के प्रतिशत का उल्लेख नहीं किया गया था। यह स्पष्ट रूप से इस कारण से था कि प्रासंगिक समय में खनिज तेल की मात्र उपस्थिति, एक हानिकारक घटक होने के कारण, मिलावट के बराबर थी और इसलिए, सार्वजनिक विश्लेषक के लिए नमूने में पाए जाने वाले खनिज तेल के प्रतिशत का उल्लेख करना आवश्यक नहीं था। इसके अलावा संशोधित मानक के तहत नमूने में पाया जाने वाला खनिज तेल खाद्य श्रेणी

का होना चाहिए, यदि स्नेहक के रूप में उपयोग किया जाता है। सार्वजनिक विश्लेषक द्वारा मामले के इस पहलू पर कोई रिपोर्ट नहीं है, जाहिर है क्योंकि उन्हें तब निर्धारित मानक को ध्यान में रखते हुए ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी। अभिलेख पर यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि नमूने में पाया गया खनिज तेल खाद्य श्रेणी का था और इसका उपयोग स्नेहक के रूप में किया जाता था और संशोधित नियमों के तहत निर्धारित वजन से 0.20 प्रतिशत से अधिक नहीं था। ऐसा नहीं है कि संशोधित नियम कठोर उबली चीनी मिठाइयो में किसी किसी भी मात्रा में और किसी भी गुणवत्ता के खनिज तेल की उपस्थिति की अनुमति देते हैं। संशोधन के बाद भी खनिज तेल की उपस्थिति मिलावट के बराबर होगी यदि यह खाद्य श्रेणी का नहीं है, और स्नेहक के रूप में उपयोग नहीं किया जाता है, और यदि यह वजन के हिसाब से 0.20 प्रतिशत से अधिक है।

अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील ने तब हमारे सामने कई निर्णयों का हवाला दिया, जिनमें ऐसे मामलों की लंबी लंबितता को ध्यान में रखते हुए कम सजा दी गई थी। [1996] 4 एस. सी. सी. 513; कृष्ण गोपाल शर्मा और एक अन्य बनाम दिल्ली सरकार एन. सी. टी. में इस न्यायालय ने नियमों के तकनीकी उल्लंघन को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जिस समय अपराध किया गया था, उस समय कोई न्यूनतम सजा निर्धारित नहीं की गई थी, यह पाया गया कि कारावास की निवारक सजा की मांग नहीं की गई थी और जुर्माना न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगा। [1992] 1 एस. सी. सी. 365 उड़ीसा राज्य बनाम के. राजेश्वर राव, और (1995) सीआरएलजे 3651: एन. सुकुमारन नायर बनाम खाद्य निरीक्षक, मावेलिकारा में इस न्यायालय का दृष्टिकोण भी ऐसा ही था।

वर्तमान मामले में इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि आरोपित अपराध के लिए कानून द्वारा न्यूनतम 6 महीने के कठोरकारावास की सजा निर्धारित है। अपीलार्थी को 6 महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है जो न्यूनतम सजा है। हम एन. सुकुमारन नायर (उपरोक्त) में पारित प्रकृति का आदेश पारित करके सजा को संशोधित करने के लिए इच्छुक नहीं हैं, जहां इस न्यायालय ने अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए केवल जुर्माने की सजा सुनाई और राज्य को साधारण कारावास की सजा को जुर्माने के लिये कम करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने का निर्देश दिया। वर्तमान मामले में अपीलार्थी को 6 महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। इसके अलावा हमारा दृढ़ मत है कि खाद्य पदार्थों के उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए खाद्य मिलावट रोकथाम अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों का सख्ती से पालन करना आवश्यक है। यदि अपराधी केवल जुर्माने लेकर छूट जायेंगे तो सख्त कानूनों का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। इसलिए, हम अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए दंड में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं।

कोई गुणावगुण नहीं पाते हुए, हम इस अपील को खारिज करते हैं।

डी.जी.

अपील खारिज कर दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता नृपेन्द्र सिनसिनवार द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।